ISSN 2348-3857

गाँधी का सामाजिक दर्शन

शक्तिसिंह शेखावत

व्याख्याता, राजनीति विज्ञान

बा.भ.दा.राज.महाविद्यालय, चिमनपुरा, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

गाँधी के चिन्तन के विभिन्न आयामों का अध्ययन करें तो गाँधी व्यक्तिवादी विचारधारा के बजाय समस्त समाज के कल्याण को महत्व देते हैं। गाँधी ने अहिंसा को वैयक्तिक आचरण तक ही सीमित न रखकर मानव जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में लागू किया। गाँधी व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सद्भाव के सम्बंधों का चिंतन देते हैं, अपने दर्शन में व्यक्ति को पर्याप्त महत्व देने के बावजूद उसे समुदाय के हितों के प्रति निरपवाद समर्पण की कामना करते हैं, गाँधी व्यक्ति व समाज के बीच किसी भी प्रकार के टकराव को नकारते हैं। गाँधी चूंकि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित थे अत: उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था का पक्षपोषण किया लेकिन प्रकारान्तर से यह व्यवस्था दूषित हो गई जिसकी गाँधी ने कटु आलोचना कि तथा गाँधी ने जाति एवं वर्णव्यवस्था के आपसी सम्बंधों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए जाति को वर्णव्यवस्था का विकृत रूप बताया। साथ ही गाँधी ने अस्पृश्यता निवारण पर विचार देते हुये इसे सामाजिक कलंक बताया तथा धार्मिक, राष्ट्रीय एवं मानवीय आधार पर अस्पृश्यता का विरोध किया। गाँधी ने कायिक श्रम के द्वारा रोटी कमाने के सिद्धान्त द्वारा समाज के समस्त वर्णों को अनिवार्य रूप से शूद्र वर्ण का सदस्य माना। गाँधी जाति, धर्म तथा साम्प्रदायिक सद्भाव पर बल देते हैं। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर चिंतन करते हुये गाँधी ने सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, बाल विवाह की आलोचना की तथा स्त्री को राजनीतिक, आर्थिक स्वतंत्रता एवं अधिकार देने पर बल देते हुये स्त्री को अबला कहने का प्रतिकार किया क्योंकि पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक शक्तिशाली है। गाँधी ने समाज में नशे की प्रवृत्ति का विरोध करते हुये मद्यपान निषेध की वकालत की जिससे समाज के पतन को रोका जा सके। समाज सुधार के विभिन्न साधनों में गाँधी ने शिक्षा पर बल देते हुये शिक्षा को व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक व आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने वाला साधन माना।

गाँधी के व्यक्तित्व का यदि हम विश्लेषण करें तो एक ही समय में वह एक राजनीतिज्ञ, स्वतंत्रता सेनानी, सत्य एवं अहिंसा के पुजारी,समाज सुधारक, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के संरक्षक के साथ-साथ एक चिन्तक के रूप में हमें दिखायी देते हैं। गाँधी एक ऐसे चिन्तक के रूप में रहे हैं जिन्होंने अपने चिंतन को केवल शब्दों या लेखनी से ही प्रकट नहीं किया वरन् अपनी जीवन के धरातल पर उन्हें स्थापित किया। गाँधी ने चिंतन के विभिन्न पक्षों पर अर्थात् आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, अंतर्राष्ट्रीय, धार्मिक पर अपने विचार एक लेखक, वक्ता एवं कर्त्ता के रूप में रखे।

अहिंसा -सामाजिक परिप्रेक्ष्य में

गाँधी ने जिस अहिंसा का सिद्धान्त दिया वह निर्विवाद रूप से व्यक्ति और उसके जीवन के समस्त आयामों को समेट लेता है। चाहे वे वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक हों या अंतर्राष्ट्रीय आयाम। गाँधी के अनुसार अहिंसा केवल एक दर्शन नहीं है बल्कि कार्य करने की एक पद्धति है, ह्रदय परिवर्तन का साधन है। गाँधी ने अहिंसा को केवल व्यक्ति का सद्गुण नहीं, अपितु जीवन का सर्वोच्च नियम माना। अत: अहिंसा के आदर्श की प्राप्ति व्यक्तिगत आचरण में ही नहीं, अपितु सामाजिक और राजनीतिक व्यवहार और व्यवस्था में भी की जा सकती है। उनका कथन था कि अहिंसा के आदर्श को व्यक्तिगत सद्गुण तक सीमित रखना, उसकी व्यापक और रचनात्मक शक्ति का अवमूल्यन होगा। उनके अनुसार अहिंसा व्यक्तिगत सद्गुण भी है, और एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का विश्वसनीय आधार भी। गाँधी की दृढ़ मान्यता है कि एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था अहिंसा पर ही आधारित हो सकती है, क्योंकि अहिंसा के बिना

किसी संगठित सामाजिक व्यवस्था की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जब गाँधी के समक्ष एक बार यह शंका उपस्थित की गई कि क्या अहिंसा के आधार पर समाज को संगठित किया जाना संभव है? गाँधी ने तत्काल प्रति प्रश्न किया कि क्या हिंसा के आधार पर किसी समय और संगठित, सामाजिक व्यवस्था की कल्पना किया जाना भी संभव है? गाँधी ने दृढ़तापूर्वक कहा कि यदि मनुष्य प्रकृति से ही अहिंसक नहीं होता तो सदियों पूर्व ही मानव समुदाय का विनाश हो गया होता।[1]

गाँधी ने कहा कि व्यक्तिगत आचरण के सिद्धान्त के रूप में तो अहिंसा के महत्व को सदैव से ही स्वीकार किया जाता रहा है। उन्होंने दावा किया कि अहिंसा के सिद्धान्त के संदर्भ में उनका मौलिक योगदान ही यह है कि उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक आचरण तथा व्यवस्था की प्रेरक व आधारभूत शक्ति के रूप को रूपान्तरित कर दिया है। गाँधी ने कहा मैंने एक नई पद्धति का प्रारम्भ किया है। यदि अहिंसा एक व्यक्ति तक सीमित है तो वह सर्वोच्च धर्म नहीं बन सकती। मैं कभी भी ऐसे व्यक्ति की पूजा नहीं कर सकता जो किसी एकान्त गुफा में बैठकर अहिंसा की साधना करता है। ऐसी अहिंसा की कोई उपयोगिता नहीं है। मैं उस अहिंसा में विश्वास करता हूँ जो व्यावहारिक वास्तविकताओं के संसार में घटित की जाती है। अहिंसा के माध्यम से व्यक्ति की ऐसी मुक्ति में मेरी आस्था नही है जो संसार से पलायन करने से प्राप्त होती हो।[2] गाँधी ने इस बात पर बल दिया कि अहिंसा की वास्तविक अभिव्यक्ति लोगों की नि:स्वार्थ सेवा के रूप में होती है। इस प्रकार सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अहिंसा के सिद्धान्त को प्रयुक्त करने का अर्थ होगा, इस प्रकार के अन्याय, दमन, शोषण और उत्पीड़न का निजी और सामूहिक रूप से अहिंसक प्रतिकार। गाँधी के अनुसार अहिंसा की उत्कृष्टम अभिव्यक्ति एक दोषयुक्त सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के संकल्प के रूप में होती है।[3] गाँधी ने आदर्श सामाजिक व्यवस्था को अहिंसक समाज अर्थात सत्य और अहिंसा पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का नाम दिया।

विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्था

गाँधी के आदर्श समाज को एक विकेन्द्रित सामाजिक प्रणाली के रूप में माना जाता है जिसमें सत्य, अहिंसा, सेवा-भावना, आत्मनिर्भरता और अपने हितों के अग्रसर करने की प्रवृत्ति समाज के सभी सदस्यों को अनुप्राणित करे। सामाजिक प्रणाली में अन्याय या शोषण के लिए कोई स्थान हो ही नहीं सकता। इस समाज की संरचना विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित होगी। अत: समाज में भौतिक और आर्थिक असमानताऐं उत्पन्न नहीं हो सकेगी। दूसरों के हितों के प्रति अपने स्वार्थ का बलिदान कर लोगों की तत्परता-न्याय के आदर्श को समाज में प्रतिष्ठित कर देगी।

रामराज्य की सामाजिक संरचना

(अ) रामराज्य में समाज का संगठन सत्य एवं अहिंसा के नैतिक मूल्यों के आधार पर होगा, गाँधी जी ने इसे अहिंसात्मक समाज कहा है।

(ब) समाज का संगठन श्रम विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर चार वर्गों वाला होगा। लेकिन समाज में अस्पृश्यता के लिए कोई स्थान नहीं होगा।

(स) इस आदर्श समाज में सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त का पालन होगा और राज्य सभी धर्मो के अनुयाइयों के साथ समान व्यवहार करेगा।

(द) स्त्रियों को सभी क्षेत्रों में पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त होंगे, तो भी उनका मुख्य कार्यक्षेत्र परिवार होगा।

(य) सभी बालकों को प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क मिलेगी और इस उद्देश्य से प्रत्येक ग्राम तथा मोहल्लें में प्राथमिक शिक्षा देने वाली स्वावलम्बी पाठशालायें स्थापित की जायेंगी।

(र) इस आदर्श समाज में शराब एवं अन्य मादक पदार्थों के उत्पादन, बिक्री एवं भोग पर पाबन्दी होगी।

(ल) इस आदर्श समाज में गौ-हत्या पर पाबन्दी होगी।[4]

व्यक्ति और समाज

व्यक्ति गाँधी के दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। गाँधी व्यक्ति को परम साध्य के रूप में चित्रित करते हैं। यह गाँधी के दर्शन का विलक्षण पक्ष है कि वे व्यक्ति को परमसाध्य मानते हुये भी, समाज और व्यक्ति के टकराव की कल्पना नहीं करते। व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों की दृष्टि से गाँधी का दृष्टिकोण, व्यक्तिवाद और समष्टिवाद के वर्गीकरण से परे है। मानव जीवन के परम श्रेय की गाँधी की संकल्पना में, व्यक्ति और समाज के प्रति टकराव के लिए कोई स्थान हो ही नहीं सकता। गाँधी का व्यक्ति और समाज सम्बन्धी दृष्टिकोण इस मौलिक आस्था से निर्धारित हुआ है कि अन्तत: व्यक्ति और समाज के मध्य एक अनिवार्य एकता विद्यमान है, क्योंकि वे दोनों चेतना के एक ही स्रोत से शासित हैं। गाँधी के अनुसार व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक और पारलौकिक सत्य की सिद्धि करना है। किन्तु उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इस लक्ष्य के प्रति समर्पित व्यक्ति सांसारिक बंधनों से पलायन अथवा लौकिक लक्ष्य की उपेक्षा नहीं कर सकता।

गाँधी के अनुसार व्यक्ति अपने इस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति, एकान्त साधना के द्वारा नहीं कर सकता। उसे अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति, अनिवार्य रूप से सामाजिक जीवन का निर्वाह करते हुये ही करनी है। अत: व्यक्ति का ब्राह्य सामाजिक आचरण, सत्य के साक्षात्कार की उसकी आन्तरिक प्रेरणा से पृथक नहीं किया जा सकता। गाँधी एक गरिमापूर्ण व्यक्ति के लिए दो बातें आवश्यक मानते हैं- व्यक्ति के आचरण पर बाहरी नियन्त्रणों का पूर्णत: उन्मूलन और अन्तरात्मा के आदेशों से शासित होते हुये व्यक्ति का, समुदाय के हितों के प्रति निरपवाद समर्पण।[5]

गाँधी ने पाश्चात्य दार्शनिकों के इस मत को स्वीकार नही किया कि व्यक्ति और समाज के हितों के मध्य कोई द्वन्द्व या टकराव है। उन्होंने स्पष्ट किया कि व्यक्ति और समाज के सम्बंधों की दृष्टि से व्यक्ति की तुलना में समाज को अथवा समाज की तुलना में व्यक्ति को वरीयता दिये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। गाँधी के अनुसार व्यक्ति की चेतना, उसमें सभी को अपने समान और सभी के हित में अपना हित समझने की प्रवृत्ति की संभावना मात्र विलीन हो जायेगी।[6] गाँधी के अनुसार सामाजिकता व्यक्ति की चेतना का अनिवार्य लक्षण है। उन्होंने व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों की तुलना बूंद और समुद्र से की। उन्होंने कहा समुद्र पानी की बूंदों से बना है, प्रत्येक बूंद की अपनी सत्ता है, किन्तु वह समग्र का अनिवार्य हिस्सा भी है। ईश्वर की सृष्टि के विराट समुद्र में हम छोटी बूंदों के समान हैं। मेरे सिद्धान्त का मर्म यह है कि मुझे प्रत्येक जीवित तत्व से तादात्मय स्थापित कर लेना चाहिए तथा प्रत्येक जीवित तत्व को ईश्वर की विराटता का ही अंश समझना चाहिए।[7]

व्यक्ति और समाज की अनिवार्य पारस्परिकता को स्वीकार करते हुये भी, गाँधी व्यक्ति की सर्वोच्चता का उद्घोष करते है कि गाँधी के लिए व्यक्ति की सर्वोच्चता का यह अर्थ नहीं है कि उसके हित समाज की तुलना में प्राथमिक हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति ही समुदाय का जागृत, सक्रिय और गतिशील घटक है। अत: समुदाय की उन्नति व्यक्ति की नैतिक उन्नति पर ही निर्भर करती है। गाँधी ने कहा मैंने यह खोज की है कि वास्तव में व्यक्ति के विकास और समुदाय के विकास में कोई भेद है ही नहीं। समुदाय का विकास पूर्णत: व्यक्ति के विकास पर निर्भर करता है। अंग्रेजी का यह सुन्दर मुहावरा सार्थक है कि कोई जंजीर, अपनी सबसे कमजोर कड़ी से ज्यादा मजबूत नही होती।[8]

वर्ण व्यवस्था

गाँधी वर्ण व्यवस्था के समर्थक हैं, उन्होंने आदर्श सामाजिक व्यवस्था को प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्ण और आश्रम व्यवस्था के आधार पर संगठित किये जाने पर बल दिया। गाँधी की दृढ़ मान्यता थी कि वर्ण व्यवस्था ही एक सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था का व्यावहारिक आधार है। परन्तु गाँधी वर्ण व्यवस्था को जाति के आधार पर नहीं बल्कि कर्म, स्वभाव और कर्त्तव्यपरायणता के आधार पर स्वीकार करते हैं। गाँधी ने वर्ण व्यवस्था में निहित चार आधारभूत व्यवसायों के आधार पर इसे अपनी प्रकृति से एक सार्वभौमिक व्यवस्था कहा है। हिन्दू धर्म की यह विशेषता है कि उसने इसे जीवन धर्म घोषित किया है। गाँधी के शब्दों में मनुष्य के चार धन्धे सार्वत्रिक हैं - विद्यादान करना, दु:खी को बचाना, खेती तथा व्यापार करना और शरीर की मेहनत से सेवा करना। इन्हीं के लिए वर्ण बनाये गये हैं। ये धन्धे सारी मानव जाति के लिए समान हैं।[9] गाँधी के अनुसार वर्ण व्यवस्था की सदस्यता का सर्वोत्तम आधार यह है कि व्यक्ति जिस वर्ण में जन्म ले उस वर्ण के कर्त्तव्यों को भी निष्ठापूर्वक पूरा निबाहे। किन्तु जब व्यक्ति जिस वर्ण में जन्म ले, उसके कर्त्तव्यों की उपेक्षा करे और किसी अन्य वर्ण के कर्त्तव्यों का पालन करे, तो उसे उसी वर्ण का सदस्य माना जायेगा; अर्थात् इस स्थिति में किसी व्यक्ति का वर्ण मात्र उसके कर्म के आधार पर तय होगा, जन्म के आधार पर नहीं। गाँधी के अनुसार वर्ण व्यवस्था का अर्थ कदापि नहीं है कि एक वर्ण का सदस्य कोई दूसरा कार्य कर ही नहीं सकता। उनके शब्दों में ब्राह्मण केवल शिक्षक नहीं होता, वह मुख्यत: एक शिक्षक होता है। किन्तु यदि कोई ब्राह्मण शारीरिक श्रम करने से मना कर दे तो उसे मूढ़ ही माना जाना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई राजपूत ज्ञान से शून्य हो तो उसके शौर्य की कोई सार्थकता नहीं है, चाहे वह तलवार का कितना ही धनी क्यों न हो, तथा कोई वैश्य जिसमें स्वयं अपने नैतिक विश्वास की चेतना से युक्त ज्ञान का भाव न हो, एक समाजधाती राक्षस के समान बन जायेगा।

गाँधी ने इस परम्परागत विचार का विरोध किया है कि शारीरिक श्रम द्वारा आजीविका कमाना केवल शूद्र वर्ण का ही कर्त्तव्य है अथवा वर्ण धर्म है। उनका सुझाव है कि प्रथम तीनों वर्णो को अपने परम्परागत वर्ण सम्बंधी कर्मों को सामाजिक सेवा के रूप में अपनाना चाहिए, किन्तु उन्हें भी अपनी आजीविका शारीरिक श्रम द्वारा ही अर्जित करनी चाहिए। गाँधी का मत है कि इस प्रकार चार वर्ण तो बने रहेंगे, किन्तु इसके साथ ही सभी हिन्दू अनिवार्य रूप से शूद्र नायक एक वर्ण के सदस्य भी हो जायेंगे।[10]

जाति व्यवस्था

गाँधी ने आधुनिक युग में मौजूद जाति-व्यवस्था तथा प्राचीनकाल की मूल वर्ण व्यवस्था में अन्तर बताते हुये कहा है कि जब हिन्दू अज्ञान के शिकार हो गये तब वर्ण के अनुचित उपयोग

के कारण अनगिनत जातियां बनीं और रोटी-बेटी के व्यवहार के अनावश्यक और हानिकारक बंधन पैदा हो गये। इस प्रकार गाँधी ने जाति व्यवस्था को वर्ण व्यवस्था की विकृत अवस्था से उत्पन्न एक दोषपूर्ण संस्था माना है। गाँधी ने इसकी निन्दा करते हुये कहा है कि जात पांत के बारे में मैंने बहुत बार कहा है कि मैं आज के अर्थ में जात-पात को नहीं मानता। यह समाज का फालतू अंग है और तरक्की के रास्ते में रुकावट जैसा है। इसी तरह आदमी-आदमी के बीच ऊँच-नीच का भेद भी में नहीं मानता। गाँधी का निश्चित मत है कि मूल वर्ण व्यवस्था वर्तमान जाति व्यवस्था के विभिन्न दोषों से युक्त व्यवस्था है। मूल वर्ण व्यवस्था विभिन्न वर्णों के कार्यो को नैतिक व आध्यात्मिक विकास का साधन मानती है, अर्थात यह व्यवसाय के आधार पर व्यक्तियों में ऊँच-नीच नहीं मानती है। मूल वर्ण व्यवस्था व्यक्ति के इस अधिकार को मानती है कि वह जिस वर्ण में जन्मा है, उसके व्यवसाय को त्यागकर अन्य किसी भी वर्ण के व्यवसाय में योग्यता प्राप्त कर ले और उसे अपनी जीविका का आधार बना ले। अपने शुद्ध रूप से वर्ण व्यवस्था सामाजिक असमानता की विरोधी है। इस बारे में गाँधी जी का कथन है वर्ण विकृत होकर, विशेषाधिकारों में बदल गये है। वस्तुत: किसी वर्ण को तिरस्कार योग्य मानना धर्म नहीं है, अपितु धर्म को अस्वीकारना है। इस बारे में उनका सारपूर्ण तर्क है कि किसी भी शरीर के विभिन्न अंग माने जाने वाले इन चार वर्णो को भी परस्पर उच्च या हीन मानना बुद्धिसंगत नहीं है। गाँधीजी का मत है कि वर्णाश्रम में अन्तर-वर्णीय विवाहों या भोजन का निषेध नहीं किया गया है, वस्तुत: यह वैयक्तिक स्वतंत्रता का विषय है। गाँधीजी के शब्दों में अलग-अलग वर्ण के लोग आपस में रोटी-बेटी का व्यवहार रख सकते है। चरित्र और तन्दुरूस्ती की खातिर ये बंधन जरूरी हो सकते हैं। लेकिन जो ब्राह्मण शूद्र की लड़की से या शूद्र ब्राह्मण की लड़की से ब्याह करता है, वह वर्ण-धर्म को नहीं मिटाता।

वर्ण-धर्म एवं आश्रम धर्म की अनुपूरकता

आश्रम व्यवस्था ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास नामक आश्रमों के माध्यम से धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के चारों पुरुषार्थों (लौकिक एवं पारलौकिक साध्यों) की सिद्धि पर बल देते हैं। वस्तुत: वर्ण व्यवस्था भी इन चारों पुरुषार्थों को स्वीकारती है और इनकी प्राप्ति में सहायक भी है। अत: गाँधी जी का मत है कि जब वर्ण व्यवस्था इस आश्रम व्यवस्था के साथ जुड़ जाती है, तब यह अधिक फलदायक एवं सारवान बन जाती है।

अस्पृश्यता निवारण

गाँधी अस्पृश्यता को सामाजिक कलंक की संज्ञा देते थे। सामाजिक न्याय की उनकी संकल्पना में अस्पृश्यता के उन्मूलन का सर्वाधिक महत्व था। वे इसे राजनीतिक स्वतंत्रता की तुलना में भी अधिक महत्व देते थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि अस्पृश्यता का उन्मूलन किये बिना, स्वराज्य की प्राप्ति असंभव भी है और निरर्थक भी है।[12] गाँधी के अनुसार अस्पृश्यता मिथ्या अभियान और स्वार्थ वृत्ति का ही सामाजिक रूप है और आत्मा का हनन करने वाला घोरतम पाप है। गाँधी ने अस्पृश्यता को अनैतिक माना तथा कहा कि यह भारतीय समाज पर एक बदनुमा दाग है, और मानवता के विरूद्ध क्रूरतम अपराध है।

(1) धार्मिक आधार पर अस्पृश्यता का विरोध

गाँधी ने इस तर्क का घोर विरोध किया कि अस्पृश्यता के पीछे हिन्दू धर्म की सम्मति है। उन्होंने दावा किया कि हिन्दू धर्म अस्पृश्यता का कोई समर्थन नहीं करता अपितु अस्पृश्यता तो हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध है। अस्पृश्यता को अपनाना अथवा उसे सहन करना घोर अधर्म है, और ईश्वर का स्पष्ट अपमान, क्योंकि अस्पृश्यता के द्वारा मानव मात्र की एकता के आध्यात्मिक सिद्धान्त तथा सत्य और अहिंसा के शाश्वत मूल्यों का उल्लंघन होता है। कुछ लोग ऊँचे है और अन्य निम्न हैं ईश्वर का अपमान है। अत: अस्पृश्यता विवेक, धर्म, सत्य और अहिंसा के विरूद्ध है।

(2) राष्ट्रीय दृष्टिकोण के आधार पर अस्पृश्यता का विरोध

गाँधी राष्ट्र की प्रगति एवं उत्थान में अस्पृश्यता को बाधा मानते थे। वे स्वराज्य को देश के सर्वांगीण विकास के लिए आत्म शुद्धि का यज्ञ मानते थे और इसलिए उनका मत था कि विदेशी निष्ठुर शासन से मुक्ति की आकांक्षा से पहले तथाकथित अस्पृश्य जातियों की मुक्ति किया जाना आवश्यक है, अन्यथा हम स्वराज्य की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना तक करने का नैतिक अधिकार भी नहीं रखते है। गाँधी ने स्पष्ट रूप से कहा कि यदि 'भारत की आबादी के पांचवे हिस्से को स्थायी गुलामी की हालत में रखते हुये स्वराज्य मिल भी गया, तो स्वराज्य एक अर्थहीन शब्द मात्र होगा।[13]

(3) मानवीय आधार पर अस्पृश्यता का विरोध

सर्वण हिन्दूओं द्वारा, समाज के निम्न समझे जाने वाले वर्ण शूद्रों के प्रति शताब्दियों से किये जा रहे अन्याय के प्रतिकार के लिए गाँधी ने शूद्रों को हरिजन की संज्ञा दी, जिसका शाब्दिक अर्थ था 'ईश्वर का व्यक्ति'। शूद्रों के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग उन्होंने अस्पृश्यता में विश्वास रखने वाले उन स्वर्ण हिन्दूओं को यह इंगित करने के लिए किया था कि सभी व्यक्ति ईश्वर की संतान

है, अत: स्वर्ण हिन्दूओं ने शूद्रों के प्रति अब तक अस्पृश्यता के रूप में अन्याय करके वास्तव में ईश्वर की सत्ता को चुनौती दी है। उन्होंने ऐसे सवर्णों को, जो अस्पृश्यता को धर्म का अंग मानते हैं, 'दुर्जन' की संज्ञा दी, क्योंकि वे इस अन्याय के भागी होने के कारण ईश्वर के विरूद्ध किये गये पाप के अपराधी थे। उन्होंने कहा 'अछूत, मेरे मत में, हमारी तुलना में, वास्तव में हरिजन, अर्थात् ईश्वर का व्यक्ति है और हम दुर्जन हैं। क्योंकि अब तक उस अछूत ने अपने हाथ हमारे मल और गंदगी को उठाकर मैले किये हैं ताकि हम आराम और सफाई से रह सकें, वहीं हमने उसके प्रति कृतज्ञ होने के बजाय उसका दमन करने में गर्व अनुभव किया है। आज इन अछूत समझे जाने वाले लोगों की जीवन पद्धति में जो कमियाँ या दोष हैं, उनके लिए पूरी तरह हम उत्तरदायी हैं। हम स्वयं भी अब भी हरिजन हो सकते हैं, किन्तु यह तभी संभव है जब हम स्रदय से उनके प्रति किये गये अन्याय के लिए प्रायश्चित करें। अस्पृश्यता निवारण को गाँधीजी सर्वाधिक सार्थक समाज सुधार मानते थे। उनके अनुसार अस्पृश्यता निवारण का संकल्प सवर्णों द्वारा हरिजनों के प्रति की गई कोई कृपा नहीं, यह तो वास्तव में स्वर्णो के लिए प्रायश्चित और शुद्धि का यज्ञ है। गाँधी के अनुसार अस्पृश्यता निवारण का कार्य केवल कानून निर्माण या सरकारी हस्तक्षेप से पूरा नहीं होगा। इसके लिए व्यापक सामाजिक जागृति और लोगों के स्रदय परिवर्तन की आवश्यकता होगी केवल कानून के दबाव या दण्ड के भय से वास्तविक अस्पृश्यता निवारण नहीं हो पायेगा।

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

गाँधी ने समाज में स्त्रियों और पुरुषों की समानता पर बल दिया, वे एक ऐसे समाज की कल्पना करते थे, जिसमें स्त्रियाँ बिना प्रतिबंध के सक्रिय भागीदारी निभाएँ। उन्हें पुरुषों के समान अपनी शैक्षणिक, बौद्धिक और नैतिक उन्नति के अवसर प्राप्त हों। गाँधी ने कहा मेरा सपनों का स्वराज्य तब तक असंभव है जब तक कि भारत की स्त्रियाँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर अपनी पूर्ण भूमिका नहीं निभाती। मैने स्वराज्य को रामराज्य के रूप में परिभाषित किया है, और रामराज्य की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक समाज में हजारों सीताऐं नही हो।[14] गाँधी ने सती प्रथा को हिंसा माना और इसे क्रूर अमानवीय व अधार्मिक माना। गाँधी ने कहा कि किसी स्त्री को उसके पति के साथ चिता में जल जाने की शिक्षा देना मानवीय गरिमा के महत्व को भूला देना है। इस प्रथा में किसी व्यक्ति की पूजा को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया जाता है। एक निष्ठावान पत्नी का वास्तविक कर्त्तव्य तो यह है कि पति के जीवन कार्यों और लक्ष्यों को अपने व्यक्तित्व में आत्म सात कर ले। इस प्रकार जीवित रहते हुये ही उस पति के प्रति निष्ठा और मानवीय गरिमा दोनों का निर्वाह करेगी और पति के प्रति उसका प्रेम व्यापक होकर ईश्वर के प्रेम में विलीन हो जायेगा।[15] गाँधी केवल सती प्रथा अथवा बाल विवाह के ही विरोधी नहीं थे, वरन् समस्त कुरीतियों और रुढ़ियों के विरूद्ध थे जो स्त्रियों के नैतिक और आध्यात्मिक विकास के मार्ग में बाधक हो।[16] गाँधी ने पर्दाप्रथा की भी घोर आलोचना की, गाँधी ने पर्दा प्रथा को अनुचित व गरिमाहीन माना साथ ही इसे पुरुष की संकीर्ण वृत्ति और महिलाओं के प्रति उसकी दमनकारी प्रवृत्ति का प्रतीक माना। गाँधी के अनुसार केवल स्त्रियों की स्वतन्त्रता की बात करने से उनकी स्थिति में सुधार नहीं आयेगा, वास्तव में अपने अधिकारों और कृतव्यों के लिए उन्हें स्वयं पुरुषों के समान जागरुक होना होगा। उन्होंने कहा शिक्षा, बलिदान की भावना और स्वयं अपनी गरिमा में आस्था स्त्रियों की स्वतंत्रता के सुनिश्चित सूत्र हैं।[17]

नारी को परम्परा से अबला कहा गया है लेकिन गाँधी स्त्री को अबला कहने का आशय उसका अपमान मानते हैं। गाँधी के अनुसार पुरुषों की अपेक्षा स्त्री अधिक शक्तिशाली है। प्रतिमा, आत्मत्याग, सहन शक्ति, साहस अहिंसा का अधिक कारगर ढ़ग से पालन जैसे गुण स्त्रियाँ और पुरुषों की अपेक्षा अधिक हैं। इसलिए उन्होंने कहा था कि अगर अहिंसा हमारे जीवन का ध्यान मंत्र है तो कहना होगा कि देश का भविष्य स्त्रियों के हाथ में है। गाँधी का मत था कि स्त्रियों को पुरुषों के समान ही समस्त सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। किन्तु वे महिलाओं पर अनावश्यक व्यावसायिक दायित्व लादना अनुचित मानते थे। उनकी मान्यता थी कि महिलाओं पर गृहस्थी को चलाने का दायित्व ही अपने आप में इतना महत्वपूर्ण और श्रम साध्य है कि उन पर अन्य कोई बाहरी दायित्व नहीं थोपा जाना चाहिए। वस्तुत: वे स्त्रियों की स्वतंत्रता का समर्थन करते हुये भी उन्हें उस परम्परागत गरिमा से वंचित नहीं करना चाहते थे, जो उन्हें पारिवारिक दायित्वों के निष्ठापूर्वक पालन द्वारा प्राप्त होती है।

मद्य-निषेध

गाँधी समाज में प्रचलित बुराईयों में मद्यपान के कटु आलोचक थे। उन्होंने जीवन में सादगी तथा नैतिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रखने की दृष्टि से नशीली वस्तुओं तथा द्रव्यों का विरोध किया। भारत के निर्धन तथा निम्न वर्ग के लोगों में मद्य सेवन की प्रथा उनके जीवन को जिस प्रकार से खोखला बना रही थी, उससे गाँधी अत्यंत चिंतित हुए। उन्होंने परिवार कल्याण की दृष्टि से मद्यनिषेध को अपने सामाजिक रचनात्मक कार्यक्रम का अंग बनाया। गाँधी की मान्यता थी कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति भी अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को तिलांजली नहीं दे सकते। यदि सम्पन्न वर्ग के लोग मद्य-निषेध का विरोध करें तो समाज को उन्हें ऐसा

करने से रोकने का अधिकार है। भारत जैसे निर्धन देश में जहाँ करोड़ों व्यक्ति पेटभर भोजन नहीं पाते, वहाँ अमीरों की विलासिता सहन नहीं की जा सकती। सम्पन्न व्यक्तियों का यह सामाजिक कर्त्तव्य है कि वे स्वयं अपने से नीचे वर्गों को सही राह दिखलाएं और उन्हें उचित शिक्षण देकर बुराइयों से दूर रखने का आदर्श स्वयं प्रस्तुत करें। गाँधी के अनुसार सामाजिक कल्याण की दृष्टि से आवश्यक नियमों को कठोरता से लागू किया जा सकता है। उनके अनुसार यदि लोकतांत्रिक दृष्टि से भी निर्णय किया जाये तो जनता का बहुमत मद्य की दुकानों को अपने पड़ौस में खुलने का विरोध करेगा। उनके अनुसार जो व्यक्ति व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात करते हैं, वे भारत को अच्छी तरह से नहीं जानते। भारत की नैतिक मान्यता में मद्यपान को अधिकार के रूप में मांगने की बात असंभव सी लगती है। पाश्चात्य देशों के समान जहाँ शराब खानों तथा वेश्यालयों की मांग जनता द्वारा राज्य से की जाती है, उतनी दुर्गति भारत की नहीं हुई है। राज्य सरकारों को मद्यनिषेध में केवल राजस्व अर्जन करने के लिए शिथिलता लाने की इजाजत देना उचित नहीं है।[18]

बुनियादी शिक्षा

गाँधी के अनुसार शिक्षा आदर्श सामाजिक प्रणाली की नींव है। उनकी शिक्षा की धारणा व्यापक है तथा उसका आधार आध्यात्मिक है। गाँधी के अनुसार सच्ची शिक्षा का अर्थ है व्यक्ति द्वारा उसके परम तत्व की पहचान और इस ज्ञान को आचरण में उतारने की प्रेरणा, क्षमता और तत्परता। इस प्रकार की शिक्षा मनुष्य के मानसिक, शारीरिक व आर्थिक विकास को एक साथ सुनिश्चित करती है। अत: गाँधी की धारणा में शिक्षा अक्षर ज्ञान या बाहरी सूचनाओं के संग्रह से अधिक है। जिसने सत्य और अहिंसा को पूरी तरह जान लिया वह भले ही निरक्षर हो, पूर्ण ज्ञानी है।

गाँधी ने अपने दर्शन के केन्द्र बिन्दू व्यक्ति के जीवन को उत्कृष्ट करने हेतु अपने चिंतन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता व अधिकारों को सम्मान देते हुये भी समष्टीवाद को महत्व दिया क्योंकि समाज का निर्माण व्यक्ति रूपी इकाईयों से ही होता है। गाँधी ने व्यक्ति-व्यक्ति के बीच समस्त प्रकार के विभेदों को नकारा। चाहे वो विभेद जाति का, धर्म का या स्त्री पुरूष का हो। गाँधी ने वर्णव्यवस्था को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के आधार पर स्वीकार किया लेकिन वर्तमानकाल में जो विकृति आयी उसकी कटु आलोचना करते हुये जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था जिसमें शूद्र वर्ण के साथ हो रहे अपमानजनक भेदभाव का विरोध किया तथा जाति व्यवस्था को अस्वीकार करते हुये अस्पृश्यता को समाज के लिए कलंक बताया तथा धर्म, राष्ट्रीयता एवं मानवीय आधार पर इसकी कटु आलोचना की। समाज में स्त्री-पुरुष भेद की आलोचना करते हुये गाँधी ने स्त्री कि स्वतन्त्रता व अधिकारों का पक्ष लेते हुये स्त्री को पुरूष की तुलना में कई क्षेत्रों में समान तो कई क्षेत्रों में श्रेष्ठ बताया तथा स्त्री को अबला समझने की परम्परा को नकारा। गाँधी ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, जिसकी वजह से स्त्री का जीवन नारकीय हो गया, पर भी कटु प्रहार किये। गाँधी ने सतीप्रथा, पर्दाप्रथा व बाल विवाह का विरोध किया। गाँधी ने समाज में व्याप्त नशे की प्रवृत्ति को रोकने के लिए मद्य निषेध का विचार दिया तथा यह माना कि व्यक्ति को स्वतंत्रता के नाम पर मद्यपान की स्वतंत्रता और राज्य को राजस्व अर्जित करने के नाम पर मद्य विक्रय की अनुमति नहीं दी जा सकती। गाँधी ने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास हेतु बुनियादी शिक्षा का चिन्तन दिया। आज समय की मांग है गाँधी के विचारों को व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में अंगीकृत एवं क्रियान्वित किया जाना समयोचित होगा।

संदर्भ सूची

1. यंग इण्डिया, 22 जनवरी, 1930
2. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खण्ड- 66, पृ.स. 426
3. हरिजन, 12 अप्रेल, 1942
4. वर्मा, श्रीराम, 1998, भारतीय राजनीतिक विचारक कॉलेज बुक सेन्टर, जयपुर, पृ.स. 430
5. चतुर्वेदी, मधुकर श्याम, 2015, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर, पृ.स. 301
6. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खण्ड-36, पृ.स. 102
7. उपर्युक्त, खण्ड-6, पृ.स. 109
8. उपर्युक्त, खण्ड-34, पृ.स. 505
9. गाँधी, मो.क., वर्ण व्यवस्था, पृ.स. 49
10. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खण्ड-54, पृ.स. 25
11. उपर्युक्त, खण्ड-80, पृ.स. 222-223
12. अमृत बाजार पत्रिका, 02.05.1915
13. यंग इण्ड़िया, 25 मई, 1921
14. हिन्दू, 23 मार्च, 1925
15. प्रेमा बेन को पत्र, 12 अगस्त, 1932
16. नवजीवन 25 मार्च, 1928
17. प्रार्थना सभा में भाषण, 1 मार्च, 1947
18. नागर, पुरूषोत्तम 1999 आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ.स. 430